International Journal of Applied Research 2015; 1(11): 1144-1145

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(11): 1144-1145
www.allresearchjournal.com
Received: 22-09-2015
Accepted: 18-10-2015

डॉ. सुशील निम्बार्क
सह आचार्य चित्रकला, राज मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. सुशील निम्बार्क
सह आचार्य चित्रकला, राज मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

राजस्थानी चित्रशैली में अंकित चित्रांकनों में लौकिक संस्कृति–एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. सुशील निम्बार्क

प्रस्तावना

राजस्थान की चित्रकला को राजस्थान के ऐतिहासिक परिवेश ने भी बहुत प्रभावित किया है। खासकर यहाँ का मध्ययुगीन दरबारी जीवन तथा युद्धकालीन परिस्थितियों का प्रभाव विशेष रूप से उल्लेखनीय रहे। यदि हम इतिहास की दृष्टि से राजस्थान की मौलिक स्थिति को जानना चाहें तो प्राग्–ऐतिहासिक काल के बाद इस धरती पर गुप्तकालीन शासन के पतन के अनन्तर ज्यों ही राजस्थान में विभिन्न राजवंशों का उदय हुआ तथा खासकर यहाँ मेवाड़, मारवाड, हाड़ौती प्रदेश, ढूँढाड़, वागड़, शेखावटी आदि प्रान्त अस्तित्व में आते दिखाई दिये, छोटे–बड़े अनेक राजवंषों के अधीन राज्य के रूप में क्रमशः परिवर्तित होते गये। इन राज्यों के आरम्भिक काल में यद्यपि इनकी अपनी–अपनी साम्राज्य के विस्तार की नीति के कारण परस्पर युद्ध की स्थिति अवश्य बनती देखी गई, किन्तु कालान्तर में विदेशी आक्रान्ताओं के साथ उन्हें स्वयं को जूझना पड़ा। यह संघर्श राजस्थान की धरती पर विस्तृत क्षेत्र में लम्बे समय तक चला, जिसमें सर्वाधिक रूप से मेवाड़ को आगे होकर सांग्रामिक विभीशिकाओं से विशेष रूप से गुजरना पड़ा। छोटी–बड़ी अन्य अनेक रियासतें विदेशी आक्रान्ताओं के समक्ष समर्पित हो चुकी थीं, जबकि मेवाड़ अपने स्वातंत्र्य–प्रेम और धर्म से विचलित न होने के संकल्प पर अन्त तक दृढ़ बना रहा। इस दृष्टि से मेवाड़ के छोटे–बड़े युद्धों के वृत्तान्तों में विशेष रूप से राणा सांगा का खानवा युद्ध तथा प्रताप का हल्दीघाटी का युद्ध तो विशेष रूप से उल्लेखनीय है ही, इसी के साथ रावल रतनसिंह के समय अलाउद्दीन खिलजी का चित्तौड़ में हुआ युद्ध भी विशेष रूप से स्मरण करने योग्य है, जिसमें धर्म–धुरीणा नारी पद्मावती राणी ने स्वधर्म की सुरक्षा में अपने प्राणों की आहुति दी थी।

राजस्थान की इस युद्ध–प्रकृति एवं युद्ध–जनित संस्कृति का यहाँ के जन–जीवन और व्यवहार पर बहुत गंभीर प्रभाव पड़ा। बहुत मोटे रूप में इस प्रभाव का यहाँ के जन–जीवन के आन्तरिक चरित्र की उज्ज्वलता, देश–प्रेम, स्वधर्म–पालन, साहस, शौर्य–पूर्ण चिन्तन, पारम्परिक भारतीय संस्कारों के प्रति दृढ़ता आदि पर पड़ा। यह प्रभाव इस प्रदेश के गाँवों के जीवन के विकास में भी देखा गया। यद्यपि इस सांग्रामिक संस्कृति के कारण सबसे बड़ी यहाँ के जन–जीवन की शक्ति और खासकर शासकों की शक्ति न केवल आक्रमणकारियों के प्रतिकार में व्यय हुई, बल्कि उससे भी अधिक जन–धन–शक्ति का अपव्यय दुर्ग–निर्माण एवं अन्य युद्ध–सामग्री के प्रबन्धन में भी हुआ। तथापि इस संस्कृति ने जिन चारित्रिक विशेषताओं तथा मानवीय गुणों को उन्नत किया है, वे आज आदर्श के रूप में ग्रहण किये जाते हैं और उनकी चर्चा आज देश के स्तर पर ही नहीं, विश्व के स्तर पर हो रही है। इस संस्कृति ने न केवल मेवाड़ के बल्कि सम्पूर्ण देश के साहित्य, चित्रकला, मूर्तिकला, शिक्षा, संगीत, नाट्य आदि को प्रभावित किया है तथा उन्हें अपनी चारित्रिक गतिशीलता प्रदान की है।

कहा तो यहाँ तक जा सकता है कि मेवाड़ की यह युद्ध–संस्कृति समय के बदलाव में ज्यों–ज्यों समापन की ओर बढ़ी है, संवेदनशील साहित्यकार, चित्रकार, शिल्पी आदि के लिए उपजीव्य बनकर उनके सृजन–धर्म के मार्ग को प्रशस्त करने वाली रही है।

युद्ध–संस्कृति बहुत बड़ा व्यापक शब्द है। इस संस्कृति का अर्थ न केवल आक्रामक के जय अथवा पराभव में स्थानीय शासकों का जूझना ही अर्थ रखता है, अपितु युद्ध से सम्बन्धित एक अलग ही तरह के वातावरण का पूरा अर्थ समझा जा सकता है, जिसका धुव्रीकरण स्वधर्म और स्वाभिमान के संरक्षण में होता है। इस वातावरण में सामन्तों का युद्ध के लिए एकत्रित होना, दुश्मन को कहाँ रोकना अर्थात मोर्चाबन्दी, सामंतों के परिवार में युद्ध का हर्ष और उन्माद का विचित्र समन्वय, मरने और मारने का संकल्प दोहराना, कसूँभे का वितरण, आंगिक अभिव्यक्ति, रण–भूमि में चारणों के गीतों की उच्चस्वर से आवृत्तियाँ, नक्कारों की गड़गड़ाहट, शंख–ध्वनि का गूँजना, हाथी घोड़ों की चीखें और हिनहिनाहट, तलवारों आदि का टकराना, बहादुरों का युद्ध में डटे रहना, कायरों का युद्ध–भूमि से भागना, धराशायी होते शत्रुओं का चिल्लाना, आसमान में गिद्धों, चीलों का मण्डराना आदि ऐसे कई दृष्य इस संस्कृति में आते हैं, जो बड़े भयानक होते हैं और विनाशकारी होकर सामान्य जनजीवन को भयाक्रान्त कर देते हैं। युद्ध की यह संस्कृति, जैसा कि हम सब जानते हैं, निस्सन्देह मानव–जीवन के लिए विनाशकारी साबित हुई है, किन्तु राजस्थान के सामन्ती जीवन में जिन्दगी के इस दौर का महत्त्व अलग तरह का ही था। जो योद्धा रणभूमि से डरकर अपने घर की ओर भाग आता था, वह कायर कहा जाता था और समाज में उसका भयंकर अपमान होता था। उसे अपनी माँ के दूध को लज्जित करने वाला कहा जाता था। इसलिए जब कोई योद्धा घर से रणभूमि की ओर प्रयाण करता था तो उसे अपनी माँ के दूध को न लजाने की शपथ दिलाई जाती थी। यही कारण था कि उस समय युद्ध खासकर क्षत्रिय लोगों के लिए किसी भी उत्सव से कम नहीं माना जाता था। इस संस्कृति में नारी–गत उत्साह की भी विशेष भूमिका अपना महत्त्व रखती रही, जो कहीं युद्ध–भूमि की ओर जाते हुए योद्धा के साहस से भी दो कदम आगे चलने वाली रही है। सलूम्बर की वीरांगना हाडी रानी का कुछ ऐसा ही लोमहर्षक इतिहास जन–जीवन में व्याप्त है।

राजस्थान की इस युद्ध–संस्कृति का प्रभाव राजस्थान के सामान्य जन–जीवन में बहुत गहरे रूप में पाया जाता है। न केवल यहाँ का साहित्य इस संस्कृति से ही अनुजीवित हुआ है, बल्कि संगीत तथा अन्य कलाएँ भी स्पष्ट रूप से प्रभावित होती दिखाई देती हैं। यही नहीं, यहाँ की बोलचाल, जन–सामान्य के, व्यवहार आदि मे भी इस संस्कृति का प्रच्छन्न प्रभाव परिलक्षित होता है तो नारी–जीवन में सहज समाया स्वाभिमानी शौर्य एवं आत्मबल भी उबलता–उफनता देखा जा सकता है।

राजस्थान का इतिहास अपनी अन्य अनेक विशिष्ट संस्कृतियों के लिये भी प्रसिद्ध रहा है, जिसमें उत्तरकालीन राजस्थान के सामन्ती और दरबारी प्रभाव की खासी झलक दिखाई दे जाती है।

संदर्भ

1. वाचस्पति गैरोला संक्षिप्त परिचय, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद 1964
2. प्रेमचन्द गोस्वामी, राजस्थान की लघु चित्रशैलीयाँ, जयपुर
3. जयनिरज राजस्थान की सांस्कृतिक परम्पराएँ, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर 1994
4. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत, रा.हि.ग्र.अ, जयपुर 1990
5. आर.के. वशिष्ट मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा